शहर के हाशिए पर एक सरकारी स्कूल

पिछले दिनों मुझे कुछ सरकारी स्कूल देखने का मौका मिला। इनमें से कुछ मध्यमवर्गीय और अभिजात शहरी बसावटों के बीच चल रहे सरकारी स्कूल थे तो कुछ ग्रामीण क्षेत्र के। बच्चों की अच्छी शिक्षा की जन आकांक्षा को निजी स्कूल अपने पक्ष में कर चुके हैं यह इन स्कूलों की स्थिति और इनमें बच्चों की घटती संख्या से स्पष्ट हो जाता है। अब इन स्कूलों में सिर्फ आसपास की गरीब आबादी के वे ही बच्चे आते हैं जिनके माता-पिता निजी स्कूल की फीस भर पाने में सक्षम नहीं हैं। मेरे द्वारा देखे गए सभी शहरी स्कूल जयपुर शहर के हैं और ग्रामीण क्षेत्र के स्कूल विकास का मानक मानी जाने वाली शहरी सभ्यता की सरहद पर हैं। विस्तरित होता जयपुर शहर इनमें से कई गांवों को अपने अंदर समा चुका है और बहुत से गांवों में नई-नई कॉलोनियां अभी अस्तित्व में आ रही हैं, और साथ ही सेठों के फार्म हाउस भी। इन बदलती परिस्थितियों में न तो ये गांव पूरी तरह गांव ही रहे हैं और न ही शहरी सुविधाओं का फायदा अभी इन्हें मिल पाया है। दोनों ही क्षेत्रों, शहरी और ग्रामीण, में संक्रमण के इस दौर में सरकारी स्कूल अपने अस्तित्व और पहचान को बचाए रखने के लिए जूझ रहे हैं। इन्हें देखकर लगता है कि समाज और आर्थिकी की इन बदली हुई परिस्थितियों में संकट के सबसे ज्यादा केन्द्र में गांव और सरकारी स्कूल आ चुके हैं। ऐसा लगता है सरकार और समाज इन स्कूलों को अपने हाल पर जीवित रहने के लिए छोड़ चुका है।

मेरे देखे इन सभी स्कूलों में कुछ दृश्य समान थे। बच्चों को पढ़ाने या नहीं पढ़ाने के तरीके सभी स्कूलों में समान थे। बिना अध्यापकों के कक्षाओं का दृश्य (अध्यापकों की उपस्थिति और अनुपस्थिति में) समान था। किताबों से कॉपियों में न जाने क्या, और क्यों नकल करते बच्चे सभी स्कूलों में समान थे। सभी स्कूलों के बदरंग भवन और उजाड़ मैदान भी समान थे। एक स्थिति में ग्रामीण और शहरी क्षेत्र के स्कूल भिन्न थे और वह था शिक्षक-बालक अनुपात। ग्रामीण स्कूलों में शिक्षकों के अनुपात में बच्चों की संख्या अधिक थी जबकि शहरी या शहर के करीब के स्कूलों में बच्चों के अनुपात में शिक्षकों की संख्या अधिक थी। सभी स्कूलों में वीरान से दिखने वाले शाला भवन थे लेकिन इनमें से एक स्कूल ऐसा भी था जो अभी भी अपने इस बुनियादी अधिकार को प्राप्त नहीं कर पाया है। यह स्कूल जयपुर के नव-विकसित उस भव्य इलाके से चंद मिनिट की दूरी पर है जहां पांच सितारा होटल से लेकर तमाम बड़े-बड़े शैक्षिक संस्थान मौजूद हैं और जहां जयपुर के केन्द्र से पहुंचने में मात्र 15 से 20 मिनिट लगते हैं। यह एक छोटा-सा स्कूल है। इस स्कूल की स्थिति जानने के लिए मैंने स्कूल 'रिपोर्ट कार्ड्स' वेब साइट देखी। इस रिपोर्ट कार्ड में यहां वर्ष 2007-08 में 19 बच्चे और 2 शिक्षक दर्ज बताए हैं। इस स्कूल की शुरुआत वर्ष 2001 में राजीव गांधी पाठशाला के रूप में हुई थी और करीब 2 वर्ष पहले ही इसे राजकीय प्राथमिक विद्यालय का दर्जा मिला है। लेकिन स्कूल रिकॉर्ड के मुताबिक इस स्कूल में अभी 29 बच्चे नामांकित हैं और तीन शिक्षक नियुक्त हैं। यह अलग बात है कि जिस दिन मैं इस स्कूल में पहुंचा, उस दिन वहां सिर्फ एक ही, शिक्षिका, मौजूद थीं। मुझे बताया गया कि एक शिक्षक की ड्यूटी परीक्षा में लगी है और वे अनेक दिनों से बोर्ड की परीक्षा के लिए किसी अन्य स्कूल में जा रहे थे तो दूसरे शिक्षक मतदाता सूची को दुरुस्त करने जुटे थे।

इस स्कूल का अपना कोई भवन नहीं है। पानी की कमी और रेतीले इलाके के कारण यहां की आबादी छितरी हुई है और पेड़ भी दूर-दूर दिखाई देते हैं। इन अभावों के बीच शिक्षक और बच्चों ने मिलकर पढ़ने के लिए अपने आसपास उपलब्ध एकमात्र बबूल के पेड़ को खोज लिया है। यही उनकी पाठशाला है। ये मार्च के महीने की अन्तिम तारीखें हैं और यह समय आते-आते धूल भरी तेज हवाएं चलने लगती हैं। सूरज की धूप भी सुहानापन खो चुकी होती है। बदलती पेड़ की छाया का पीछा करते बच्चे भी दिनभर अपनी जगह बदलते रहते हैं। बच्चों के बैठने के लिए दरी है और शिक्षिका के लिए प्लास्टिक की कुर्सी। बबूल के पेड़ के तने से ब्लैक बोर्ड खड़ा है। स्कूल भवन नहीं है इसलिए शौचालयों और पीने के पानी की बात करना बेमानी होगी। बच्चे अपने साथ काम चलाने लायक पानी प्लास्टिक की बोतलों में भर लाते हैं और शिक्षिका के लिए 5-6 घंटों के गुजारे लायक पानी एक छोटी-सी मटकी में। स्कूल का सामान रखने के लिए, पास में अधूरे पड़े मकान का एक ढांचे का इस्तेमाल होता है जो वहां के किसी बाशिंदे का है जिसमें वह अभी नहीं रहता। शिक्षिका ने बताया कि इसकी चाबी उन शिक्षक के साथ चली गई है जिनकी परीक्षा ड्यूटी लगी हुई है और जो अनेक दिनों से स्कूल नहीं आ रहे हैं। स्कूल में नामांकित सभी बच्चे अनुसूचित जाति के हैं। आज स्कूल में कुल 18 बच्चे उपस्थित हैं। इनमें से करीब 6-7 बच्चे पांच वर्ष से कम आयु के हैं जो अपने बड़े भाई-बहिनों के साथ स्कूल चले आए हैं।

हम जानते हैं कि स्कूल की यह भौतिक स्थिति रवीन्द्रनाथ के शिक्षा दर्शन के आधार पर नहीं चुनी गई है। शहरों के विस्तार और जमीनों के असमान छूते भावों की वजह से पंचायत, ग्राम समुदाय और कोई भी परिवार स्कूल के लिए जमीन देने को तैयार नहीं है। सभी को शिक्षा मुहैया कराने की पुरजोर घोषणा करने वाली सरकारें भी इस स्कूल के लिए अभी तक जमीन आवंटित नहीं कर पाई हैं। सर्व शिक्षा अभियान की शिक्षा की गुणवत्ता सूची में सबसे ऊपर विराजमान आधारभूत सुविधाएं, और इन्हें हर स्कूल के लिए मुहैया करवाने का वायदा; अभी जयपुर शहर की सरहद से सटे इस स्कूल तक में पूरा नहीं हो पाया है। यह राजनीति के केन्द्र की नाक के नीचे चल रहे एक स्कूल की एक तस्वीर है। दूर-दराज के ग्रामीण क्षेत्र की स्थिति का अनुमान इससे लगाया जा सकता है।

सरकारी स्कूलों में शिक्षा की खराब गुणवत्ता के लिए आसानी से शिक्षक- बालक अनुपात (बच्चों की अधिकता) को जिम्मेदार ठहरा दिया जाता है। दूर-दराज के बहुत से स्कूल इस समस्या से पीड़ित हैं। ऐसे स्कूलों में नियुक्ति से बचने के लिए शिक्षक अपने सारे जोड़-तोड़ लगाने से नहीं चूकते। लेकिन शहर और शहर के आसपास के स्कूल इससे उलट समस्या से पीड़ित हैं और वह है बच्चों के अनुपात में शिक्षकों की अधिकता। यदि इस स्कूल के शिक्षक-बालक अनुपात को देखें तो यह 1 : 9 का ठहरता है जो मान्य सरकारी अनुपात से बेहद कम है। लेकिन क्या इसके बावजूद भी शिक्षा की बेहतर गुणवत्ता इस स्कूल में सुनिश्चित हो पा रही है ? बच्चों से मैं अन्तःक्रिया नहीं कर पाया लेकिन मैं जितनी देर इस स्कूल में रुका उतने समय सभी बच्चे अपनी किताबों से कॉपी में कुछ नकल करने या स्लेट पर गिनती लिखने में व्यस्त थे और इस बीच शिक्षिका कुर्सी पर चुपचाप बैठी थीं। इस एक स्कूल की स्थिति का सामान्यीकरण नहीं किया जा सकता। लेकिन हम सभी जानते हैं कि आज कमोबेश सरकारी स्कूलों की हालात यही है। एक तरफ विचार के स्तर पर यह माना जाता है कि स्कूल आधुनिक समाज में अनिवार्य संस्था है और शिक्षा बच्चों में सोचने-समझने, दुनिया की बेहतर समझ विकसित करने और मूल्यों के विकास में योगदान करती है। वहीं व्यवहार में स्कूली यथार्थ इससे कोसों दूर नजर आता है। लेकिन यदि स्कूल अनिवार्य है और वह बच्चों को किसी तरह की सार्थक गतिविधि में नहीं जुटा पाता तो आखिर उसके होने का उद्देश्य क्या हो सकता है और अन्ततः ऐसे स्कूल बच्चों को क्या दे रहे हैं ?

स्कूलों की कार्य प्रणाली को देखकर नहीं लगता है कि यह अनायास है। ऐसा भी नहीं हो सकता कि सरकार इससे अवगत नहीं हो। कुछ लोग मानते हैं कि शिक्षा व्यवस्था सरकार के नियंत्रण से फिसल चुकी है और अपने राजनैतिक हितों के चलते वह स्कूलों की बेहतरी के लिए किसी भी तरह के कदम उठाने से डरती है। कुछ लोग मानते हैं कि सरकार इन स्कूलों को इसी रूप चलाए रखना चाहती है ताकि एक तरफ उसका कल्याणकारी चेहरा बना रहे तो दूसरी तरफ पूंजीवादी समाज व्यवस्था के एजेन्ट के रूप में यथास्थिति को बनाए रखने के दायित्व को भी पूरा करती रहे। शिक्षा की सामाजिक भूमिका को समझने के प्रयास में शिक्षा समाजशास्त्रियों ने स्कूली गतिविधियों की व्याख्या की है। उनका मानना है कि स्कूलों को राजनीति से तटस्थ संस्था मानना एक बड़ी भूल होगी। स्कूल पूरी तरह आर्थिक तंत्र से प्रभावित होता है। यदि स्कूली दिनचर्या पर गौर करें तो मालूम होता है कि आरंभिक कक्षाओं में बच्चों को सबसे पहले सिखाया जाने वाला अध्याय स्कूल शिक्षक की सत्ता को बिना प्रश्न किए स्वीकार करना होता है। अपने ठोस अध्ययनों के जरिए से वे कहते हैं कि वर्तमान स्कूली व्यवस्था मौजूदा पूंजीवादी समाज को पुनर्उत्पादित करने और उसे वैधानिक रूप प्रदान करने का काम करती है। साथ ही वह पूंजीवादी समाज के बने रहने के लिए अनिवार्य सामाजिक विषमता और वर्गीय चरित्र को बनाए रखने में मदद करती है। बड़े पैमाने पर चल रहा शिक्षा का यह अभ्यास सामाजिक और आर्थिक संरचना को असमान बनाए रखने में मददगार है और अन्ततः सत्ता संपन्न वर्ग के हितों को साधने वाला ही होगा।

हमें लगता है इन अनुभवों की जैसे भी व्याख्या की जाए लेकिन स्कूली जीवन के ये अनुभव भावी पीढ़ी के मन में न सिर्फ जीवन के प्रति निरर्थकता बोध भरते हैं बल्कि अनास्था भी पैदा करते हैं। इस तरह के अनुभव बच्चों में सीखने की स्वभाविक वृत्ति को भी नष्ट करते हैं और ये अनुभव जीवन भर किसी प्रकार के विचार और व्यवहार को प्रश्नित करने, उन्हें अस्वीकार करने के साहस को भी खत्म करते हैं। ऐसा लगता है कि हम एक खतरनाक स्थिति में प्रवेश करते जा रहे हैं। आज के समय में ज्यादा गंभीर समस्या यह है कि स्कूली शिक्षा पर सरकार के साथ लोकतांत्रिक तरीके से संवाद नहीं किया जा सकता। वह सुनना नहीं चाहती। साथ ही वह स्कूली व्यवस्था की आलोचना करने वाले स्वरों को दबा देना चाहती है। वह आम जन के प्रति अपनी लोकतांत्रिक जबावदेही से पल्ला झाड़ती जा रही है। जब तक हमारे देश की लोकतांत्रिक सरकारें सार्वजनिक शिक्षा के प्रति सही मायने में जवाबदेह नहीं होंगी तब तक दलित, पिछड़े और ग्रामीण समाज के बहुसंख्यक बच्चे समाज के हाशिए पर बने रहेंगे। ◆